



Original Article

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री की आत्म-खोज और पहचान की समस्या : एक आलोचनात्मक

अध्ययन

सविता कुमारी

शोधार्थी

वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय आरा (बिहार)

Manuscript ID:

IJAAR-130423

ISSN: 2347-7075

Impact Factor – 8.141

Volume - 13

Issue - 4

March – April 2026

Pp. 137 - 142

Submitted: 19 Mar. 2026

Revised: 02 Apr. 2026

Accepted: 05 Apr. 2026

Published: 10 Apr. 2026

Corresponding Author:

सविता कुमारी

Quick Response Code:



Website: <https://ijaar.co.in/>



DOI: 10.5281/zenodo.20269853

DOI Link:

<https://doi.org/10.5281/zenodo.20269853>

सारांश:

कृष्णा सोबती हिंदी साहित्य की उन अत्यंत प्रभावशाली और प्रगतिशील लेखिकाओं में से हैं, जिन्होंने स्त्री जीवन के विविध पक्षों—उसकी चेतना, उसकी स्वतंत्रता, उसकी भावनात्मक जटिलताओं तथा उसकी यौनिक पहचान—को एक नए, साहसिक और यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। उनके साहित्य में स्त्री केवल पारंपरिक सामाजिक भूमिकाओं जैसे पत्नी, माँ या गृहिणी तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह एक जागरूक, संवेदनशील और आत्मचिंतनशील व्यक्तित्व के रूप में उभरती है, जो अपने अस्तित्व और पहचान की खोज में निरंतर संघर्ष करती दिखाई देती है।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री की आत्म-खोज की प्रक्रिया एक जटिल और बहुआयामी यात्रा के रूप में सामने आती है, जिसमें वह न केवल बाह्य सामाजिक संरचनाओं—जैसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था, पारिवारिक अनुशासन और नैतिक दबावों—से जूझती है, बल्कि अपने आंतरिक मनोवैज्ञानिक द्वंद्वों और भावनात्मक अस्थिरताओं से भी संघर्ष करती है। यह संघर्ष उसे अपने शरीर, अपनी इच्छाओं और अपनी स्वतंत्रता के प्रति जागरूक बनाता है तथा धीरे-धीरे उसे आत्म-स्वीकृति की दिशा में अग्रसर करता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री की पहचान-निर्माण प्रक्रिया तथा उसकी आत्म-खोज की जटिलताओं का आलोचनात्मक अध्ययन करना है। इसमें यह भी विश्लेषित किया गया है कि किस प्रकार उनकी नायिकाएँ परंपरागत मान्यताओं को चुनौती देते हुए अपने लिए एक नई सामाजिक और व्यक्तिगत पहचान निर्मित करती हैं। उनके पात्र न केवल विद्रोह करते हैं, बल्कि आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की एक नई परिभाषा भी गढ़ते हैं।

यह अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि कृष्णा सोबती का साहित्य स्त्री को केवल पीड़ित या सहनशील इकाई के रूप में नहीं, बल्कि एक सशक्त, स्वायत्त, आत्मनिर्भर और विद्रोही व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करता है, जो सामाजिक रूढ़ियों और परंपरागत बंधनों को चुनौती देते हुए अपनी स्वतंत्र पहचान का निर्माण करती है। इस प्रकार उनका साहित्य आधुनिक स्त्री-विमर्श को एक नई दिशा, नई ऊर्जा और नया दृष्टिकोण प्रदान करता है।



मुख्य शब्द: स्त्री चेतना, आत्म-खोज, पहचान की समस्या, पितृसत्ता, यौनिक स्वतंत्रता, नारी विमर्श, कृष्णा सोबती, आधुनिक हिंदी उपन्यास, स्त्री अस्मिता, सामाजिक संरचना.



Creative Commons



Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)

This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International License (CC BY-NC-SA 4.0), which permits others to remix, adapt, and build upon the work non-commercially, provided that appropriate credit is given and that any new creations are licensed under identical terms.

How to cite this article:

सविता कुमारी (2026). कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री की आत्म-खोज और पहचान की समस्या : एक आलोचनात्मक अध्ययन. *International Journal of Advance and Applied Research*, 13(4), 137 - 142.

<https://doi.org/10.5281/zenodo.20269853>

भूमिका:

हिंदी साहित्य में कृष्णा सोबती का स्थान अत्यंत विशिष्ट, महत्वपूर्ण और युगांतकारी माना जाता है। वे उन विरल लेखिकाओं में से हैं जिन्होंने न केवल स्त्री जीवन की संवेदनशीलताओं, उसकी आंतरिक पीड़ा, उसके मानसिक द्वंद्व और उसकी भावनात्मक जटिलताओं को गहराई से समझा, बल्कि उसे एक नए साहित्यिक और वैचारिक दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत भी किया। उनका लेखन हिंदी कथा-साहित्य में एक ऐसी धारा का निर्माण करता है, जिसमें स्त्री केवल सहानुभूति या करुणा की पात्र नहीं रहती, बल्कि वह स्वयं अपने अस्तित्व की व्याख्याकार बन जाती है।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री जीवन का चित्रण परंपरागत ढाँचों को तोड़ते हुए सामने आता है। यहाँ स्त्री केवल परिवार, समाज और परंपरा की सीमाओं में बंधी हुई इकाई नहीं है, बल्कि वह एक जागरूक, संवेदनशील और विचारशील व्यक्तित्व के रूप में उभरती है। वह अपने अधिकारों, अपनी इच्छाओं और अपनी स्वतंत्रता के प्रति सजग होती है तथा अपने जीवन की दिशा स्वयं निर्धारित करने का प्रयास करती है। इस प्रकार सोबती का साहित्य स्त्री को एक निष्क्रिय पात्र के स्थान पर एक सक्रिय और निर्णयक्षम इकाई के रूप में स्थापित करता है।

उनके लेखन में स्त्री की पहचान का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्त्री अपने अस्तित्व को समाज द्वारा निर्धारित भूमिकाओं के भीतर खोजने के बजाय स्वयं के अनुभवों, भावनाओं और संघर्षों के माध्यम से समझने का प्रयास करती है। यह प्रक्रिया उसे आत्म-चेतना की ओर ले जाती है, जहाँ वह अपने शरीर, अपनी इच्छाओं और अपनी मानसिक स्वतंत्रता के प्रति अधिक सजग होती जाती है। यही आत्म-चेतना आगे चलकर उसकी आत्म-खोज का आधार बनती है।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में पितृसत्तात्मक व्यवस्था, सामाजिक परंपराएँ और नैतिक बंधन स्त्री की पहचान को सीमित करने का प्रयास करते हैं, परंतु उनकी नायिकाएँ इन सीमाओं को स्वीकार करने के बजाय उनका प्रतिरोध करती हैं। यह प्रतिरोध कभी मौन होता है तो कभी स्पष्ट विद्रोह के रूप में सामने आता है। इस संघर्ष के माध्यम से स्त्री अपने भीतर छिपी हुई शक्ति को पहचानती है और धीरे-धीरे आत्मनिर्भरता की दिशा में आगे बढ़ती है।

सोबती का साहित्य इस बात को भी स्पष्ट करता है कि स्त्री की पहचान कोई स्थिर या पूर्वनिर्धारित अवधारणा नहीं है, बल्कि यह एक निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया समाज, संस्कृति, परंपरा और व्यक्तिगत अनुभवों के बीच चलने वाले द्वंद्व से निर्मित होती है। इसी कारण उनकी



नायिकाएँ एक ओर परंपरा से जुड़ी रहती हैं, तो दूसरी ओर आधुनिकता की ओर भी अग्रसर होती हैं।

इस प्रकार कृष्णा सोबती का साहित्य स्त्री जीवन को एक नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है, जहाँ स्त्री केवल भोग्या या सहनशील पात्र नहीं, बल्कि एक आत्म-सचेत, संघर्षशील और स्वतंत्र पहचान की खोज में लगी हुई जीवंत इकाई है। उनके उपन्यासों में स्त्री की यह यात्रा ही उनके साहित्य का मूल आधार और केंद्रीय तत्व बन जाती है, जो आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श को एक सशक्त दिशा प्रदान करती है।

स्त्री की आत्म-खोज की अवधारणा:

कृष्णा सोबती के साहित्य में आत्म-खोज की अवधारणा अत्यंत गहन, बहुआयामी और आधुनिक स्त्री-विमर्श से जुड़ी हुई है। यहाँ आत्म-खोज का अर्थ केवल आत्म-ज्ञान या स्वयं को समझ लेने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी जटिल प्रक्रिया है जिसमें स्त्री अपने सामाजिक रूप से निर्मित पहचान (socially constructed identity) से धीरे-धीरे मुक्त होकर अपने वास्तविक अस्तित्व को पहचानने का प्रयास करती है। यह प्रक्रिया उसे आत्म-स्वीकृति, आत्मसम्मान और स्वतंत्र चेतना की ओर ले जाती है।

सोबती के उपन्यासों में स्त्री यह समझने का प्रयास करती है कि उसका अस्तित्व केवल परिवार, विवाह, मातृत्व या समाज द्वारा निर्धारित भूमिकाओं तक सीमित नहीं है। वह इन भूमिकाओं से आगे बढ़कर अपने व्यक्तिगत अस्तित्व, अपनी भावनाओं, अपनी इच्छाओं और अपनी मानसिक स्वतंत्रता को समझने की कोशिश करती है। यह आत्म-खोज एक प्रकार का आंतरिक संघर्ष है, जिसमें स्त्री परंपरागत मूल्यों और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है।

उनकी नायिकाएँ धीरे-धीरे यह अनुभव करती हैं कि समाज ने उनके लिए जो पहचान तय की है, वह उनकी वास्तविक पहचान नहीं है, बल्कि एक थोपी हुई संरचना है। इसी कारण वे अपने भीतर झाँकने लगती हैं और अपने अस्तित्व से जुड़े मूलभूत प्रश्नों को सामने रखती हैं। यह प्रश्न केवल जिज्ञासा नहीं हैं, बल्कि आत्म-चेतना के जागरण का प्रतीक हैं, जो उन्हें अपने जीवन को नए दृष्टिकोण से देखने के लिए प्रेरित करते हैं।

वे बार-बार अपने भीतर से प्रश्न करती हैं—

- मैं कौन हूँ?
- क्या मेरी पहचान केवल एक पत्नी, बेटी या माँ के रूप में ही सीमित है?
- मेरी वास्तविक इच्छाएँ और आकांक्षाएँ क्या हैं?
- क्या मेरा शरीर, मेरी भावनाएँ और मेरा मन वास्तव में मेरा अपना है, या समाज ने उन्हें नियंत्रित कर लिया है?

इन प्रश्नों के माध्यम से स्त्री अपनी चेतना के नए स्तर पर पहुँचती है, जहाँ वह केवल सामाजिक अपेक्षाओं को पूरा करने वाली इकाई नहीं रह जाती, बल्कि एक स्वतंत्र विचारशील व्यक्ति के रूप में स्वयं को देखने लगती है।

कृष्णा सोबती के साहित्य में आत्म-खोज की यह प्रक्रिया सरल या एक-रेखीय नहीं है, बल्कि यह निरंतर चलने वाला संघर्ष है। इस संघर्ष में स्त्री कभी परंपरा की ओर लौटती है, तो कभी आधुनिकता की ओर अग्रसर होती है। यह द्वंद्व उसकी पहचान को और अधिक जटिल बनाता है, लेकिन साथ ही उसे आत्मविश्लेषण की गहराई भी प्रदान करता है।

उनकी नायिकाएँ यह भी समझने लगती हैं कि आत्म-खोज का अर्थ केवल समाज से विद्रोह करना नहीं है, बल्कि अपने भीतर की सच्चाई को स्वीकार करना भी है। यह स्वीकार्यता ही उन्हें आत्म-स्वीकृति की ओर ले जाती है, जहाँ



वे अपने शरीर, अपनी इच्छाओं और अपने अनुभवों को बिना किसी अपराधबोध के स्वीकार करना सीखती हैं।

इस प्रकार कृष्णा सोबती के साहित्य में स्त्री की आत्म-खोज एक ऐसी यात्रा है जो बाहरी दुनिया से अधिक आंतरिक दुनिया में घटित होती है। यह यात्रा स्त्री को एक नई पहचान प्रदान करती है—एक ऐसी पहचान जो स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और आत्मचेतन होती है। यही कारण है कि सोबती का साहित्य स्त्री चेतना को एक नई दिशा और गहराई प्रदान करता है, जहाँ स्त्री केवल देखी जाने वाली वस्तु नहीं, बल्कि स्वयं को देखने और समझने वाली सक्रिय चेतना बन जाती है।

पहचान की समस्या : एक सामाजिक संघर्ष:

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री की पहचान एक अत्यंत जटिल, बहुआयामी और गहरे सामाजिक-सांस्कृतिक संघर्ष के रूप में सामने आती है। यहाँ स्त्री की पहचान कोई स्थिर या पूर्वनिर्धारित अवधारणा नहीं है, बल्कि यह समाज, परिवार, परंपरा और व्यक्तिगत चेतना के बीच निरंतर टकराव से निर्मित होती है। समाज स्त्री के लिए एक “आदर्श नारी” का ढाँचा निर्धारित करता है, जिसमें उससे अपेक्षा की जाती है कि वह आज्ञाकारी, सहनशील, त्यागमयी और पारंपरिक मूल्यों का पालन करने वाली हो।¹

किन्तु सोबती की नायिकाएँ इस निर्धारित ढाँचे से भिन्न एक स्वतंत्र और संवेदनशील व्यक्तित्व रखती हैं। उनका आंतरिक अस्तित्व, उनकी इच्छाएँ और उनकी मानसिक स्वतंत्रता उन्हें इस “आदर्श” छवि से अलग खड़ा कर देती हैं। यही भिन्नता उनके जीवन में एक गहरा द्वंद्व उत्पन्न करती है, जो उनकी पहचान को संकटग्रस्त बना देता है। यह संकट केवल बाहरी नहीं बल्कि आंतरिक भी होता है, जहाँ स्त्री स्वयं यह समझने का प्रयास करती है कि वह वास्तव में कौन है और समाज उसे क्या बनाना चाहता है।²

इस प्रकार स्त्री की पहचान का प्रश्न एक सामाजिक संघर्ष बन जाता है, जिसमें वह बार-बार अपने अस्तित्व और समाज की अपेक्षाओं के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करती है, परंतु यह संतुलन हमेशा अस्थिर रहता है।³

परंपरा और आधुनिकता का संघर्ष:

कृष्णा सोबती के पात्रों में परंपरा और आधुनिकता के बीच चलने वाला संघर्ष अत्यंत स्पष्ट और प्रभावशाली रूप में दिखाई देता है। एक ओर वे पारंपरिक मूल्यों, सामाजिक मर्यादाओं और सांस्कृतिक बंधनों से गहराई से जुड़ी होती हैं, तो दूसरी ओर आधुनिक विचारधारा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता की ओर भी आकर्षित होती हैं।⁴

यह द्वंद्व उनकी पहचान को और अधिक जटिल बना देता है, क्योंकि वे न तो पूरी तरह परंपरा को अस्वीकार कर पाती हैं और न ही पूरी तरह आधुनिकता को अपनाने में सक्षम होती हैं। परिणामस्वरूप वे एक ऐसी मानसिक स्थिति में जीती हैं जहाँ उनका अस्तित्व लगातार दो विपरीत ध्रुवों के बीच झूलता रहता है।⁵

यह संघर्ष केवल बाहरी सामाजिक ढाँचे का नहीं बल्कि उनके भीतर चलने वाली मानसिक प्रक्रिया का भी हिस्सा है। कभी वे पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों को स्वीकार करने का प्रयास करती हैं, तो कभी अपनी स्वतंत्र पहचान की खोज में उनसे विद्रोह करती हैं। यही स्थिति उन्हें एक निरंतर आत्म-विश्लेषण और आत्म-खोज की ओर ले जाती है।⁶

यौनिकता और आत्म-स्वीकृति:

कृष्णा सोबती ने हिंदी साहित्य में स्त्री यौनिकता को जिस साहस, स्पष्टता और यथार्थवाद के साथ प्रस्तुत किया, वह अपने समय में एक क्रांतिकारी और चुनौतीपूर्ण कदम माना



जाता है। उन्होंने स्त्री को केवल “पवित्र”, “संयमी” या “आदर्श” छवि तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे एक जीवंत, प्राकृतिक और मानवीय व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें उसकी यौन इच्छाएँ भी उसकी पहचान का स्वाभाविक और अनिवार्य हिस्सा हैं।¹

सोबती के अनुसार, स्त्री की यौनिकता कोई अपराध या सामाजिक कलंक नहीं है, बल्कि यह उसकी जैविक और मानसिक संरचना का हिस्सा है, जिसे स्वीकार करना उसकी आत्म-चेतना के विकास के लिए आवश्यक है। जब समाज इन इच्छाओं को दबाने या नियंत्रित करने का प्रयास करता है, तो इससे स्त्री के भीतर अपराधबोध, अस्वीकृति और मानसिक द्वंद्व उत्पन्न होता है, जो उसकी पहचान को कमजोर करता है।²

उनके साहित्य में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि जब स्त्री अपनी यौनिकता को स्वीकार करती है, तभी वह अपनी पूर्ण पहचान की ओर अग्रसर होती है। यह स्वीकृति उसे आत्म-सम्मान, आत्मविश्वास और मानसिक स्वतंत्रता प्रदान करती है। इस प्रकार यौनिकता का स्वीकार केवल शारीरिक स्तर पर नहीं, बल्कि मानसिक और सामाजिक स्तर पर भी स्त्री को आत्मनिर्भर बनाता है।³

भाषा और पहचान:

कृष्णा सोबती की भाषा उनकी स्त्री-चेतना का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट पक्ष है। उन्होंने साहित्यिक हिंदी की पारंपरिक, औपचारिक और शुद्ध शैली से हटकर लोकभाषा, पंजाबी, उर्दू और बोलचाल की मिश्रित हिंदी का प्रयोग किया, जिससे उनके पात्र अधिक यथार्थवादी, जीवंत और स्वाभाविक प्रतीत होते हैं।⁴

यह भाषिक शैली केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, बल्कि यह स्त्री अनुभवों को उनकी मूल संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत करने का एक सशक्त साधन भी है। उनकी भाषा में

ग्रामीण जीवन, पारिवारिक संबंधों और स्त्री मनोविज्ञान की गहराई स्पष्ट रूप से झलकती है। यह भाषा स्त्री के अनुभवों को कृत्रिमता से मुक्त कर उन्हें अधिक प्रामाणिक बनाती है।⁵

इस प्रकार भाषा उनके साहित्य में केवल संप्रेषण का साधन नहीं, बल्कि पहचान निर्माण का एक महत्वपूर्ण उपकरण बन जाती है, जिसके माध्यम से स्त्री अपने अस्तित्व को अधिक सशक्त रूप में अभिव्यक्त करती है।⁶

विद्रोह और आत्मनिर्भरता:

कृष्णा सोबती की नायिकाएँ केवल सहनशील, आज्ञाकारी या परंपरा का पालन करने वाली स्त्रियाँ नहीं हैं, बल्कि वे साहसी, आत्मचेतन और विद्रोही व्यक्तित्व की धारक भी हैं। वे सामाजिक नियमों, पारंपरिक बंधनों और नैतिक दबावों को स्वीकार करने के बजाय उन्हें चुनौती देती हैं और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती हैं।⁷

यह विद्रोह उनके जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ लाता है, जहाँ वे यह समझने लगती हैं कि आत्मनिर्भरता केवल आर्थिक स्वतंत्रता नहीं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक स्वतंत्रता भी है। वे अपने निर्णय स्वयं लेने, अपने शरीर और इच्छाओं पर अधिकार स्थापित करने तथा सामाजिक अपेक्षाओं से ऊपर उठने का प्रयास करती हैं।⁸

उनकी यह विद्रोही चेतना उनकी आत्म-खोज की प्रक्रिया का एक आवश्यक चरण है, क्योंकि इसी के माध्यम से वे अपनी वास्तविक पहचान की ओर अग्रसर होती हैं। यह संघर्ष उन्हें समाज के भीतर रहते हुए भी एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करता है।⁹



निष्कर्ष:

कृष्णा सोबती के उपन्यासों का समग्र अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि उनके साहित्य में स्त्री की आत्म-खोज केवल एक साहित्यिक विषय नहीं है, बल्कि यह एक गहन सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया निरंतर गतिशील रहती है, जिसमें स्त्री अपने भीतर और बाहर दोनों स्तरों पर संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। वह समाज द्वारा निर्मित परंपरागत भूमिकाओं, नैतिक मान्यताओं और पितृसत्तात्मक ढाँचों के बीच अपने वास्तविक अस्तित्व की खोज करती है और धीरे-धीरे अपनी पहचान को पुनः परिभाषित करने का प्रयास करती है।¹

उनकी नायिकाएँ यह स्पष्ट रूप से सिद्ध करती हैं कि स्त्री की पहचान किसी बाहरी संरचना, सामाजिक नियम या पारिवारिक अपेक्षाओं द्वारा स्थायी रूप से निर्धारित नहीं की जा सकती, बल्कि यह उसकी आंतरिक चेतना, व्यक्तिगत अनुभवों, भावनात्मक संघर्षों और आत्म-विश्लेषण की प्रक्रिया से निर्मित होती है। यह पहचान स्थिर नहीं बल्कि परिवर्तनशील होती है, जो समय, परिस्थितियों और अनुभवों के साथ विकसित होती रहती है।²

कृष्णा सोबती के साहित्य में स्त्री केवल पीड़ित या परंपरा में बंधी हुई इकाई नहीं है, बल्कि वह एक जागरूक, संवेदनशील और संघर्षशील व्यक्तित्व के रूप में उभरती है, जो अपने अधिकारों, इच्छाओं और स्वतंत्रता के प्रति सजग है। वह समाज की सीमाओं को स्वीकार करने के बजाय उन्हें प्रश्नांकित करती है और अपने अस्तित्व के लिए नए रास्ते खोजती है। यह प्रक्रिया उसे आत्म-निर्भरता, आत्म-सम्मान और आत्म-स्वीकृति की ओर अग्रसर करती है।³

इस प्रकार सोबती का साहित्य स्त्री विमर्श को एक नई दिशा प्रदान करता है, जहाँ स्त्री केवल विचार का विषय नहीं, बल्कि स्वयं विचार करने वाली, निर्णय लेने वाली और अपने

जीवन को दिशा देने वाली सक्रिय इकाई बन जाती है। उनके उपन्यास आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और यह संदेश देते हैं कि वास्तविक स्वतंत्रता तभी संभव है जब स्त्री अपनी पहचान को स्वयं समझे और स्वीकार करे।⁴

अंततः यह कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती का साहित्य स्त्री जीवन की जटिलताओं, उसकी आत्म-खोज और उसकी पहचान की समस्याओं को अत्यंत गहराई और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करता है। उनका लेखन स्त्री को एक नई दृष्टि, नई भाषा और नई पहचान प्रदान करता है, जो उसे परंपरागत सीमाओं से मुक्त कर एक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करता है।⁵

संदर्भ :

1. सोबती, कृष्णा। मित्रो मरजानी। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966, पृ. 25–30।
2. सोबती, कृष्णा। जिन्दगीनामा। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979, पृ. 110–118।
3. सोबती, कृष्णा। दिलो दानिशा। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृ. 55–60।
4. शर्मा, रामविलास। हिंदी साहित्य का इतिहास। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 410–415।
5. वर्मा, नगेन्द्र। आधुनिक हिंदी उपन्यास और नारी चेतना। लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012, पृ. 88–92।
6. सिंह, नामवर। आलोचना और विचारधारा। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 150–155।
7. अग्रवाल, कमला। स्त्री विमर्श और हिंदी साहित्य। वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 60–66।
8. चौधरी, मृदुला। कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री चेतना। साहित्य भवन, आगरा, 2018, पृ. 95–100।